शूद्रा

मां और बेटी एक झोंपड़ी में गांव के उस सिरे पर रहती थीं। बेटी बाग से पत्तियां बटोर लाती, मां भाड़ झोंकती। यही उनकी जीविका थी। सेर-दो सेर अनाज मिल जाता था, खाकर पड़ रहती थीं। माता विधवा थी, बेटी क्वांरी, घर में और कोई आदमी न था। मां का नाम गंगा था, बेटी का गौरा!

गंगा को कई साल से यह चिन्ता लगी हुई थी कि कहीं गौरा की सगाई हो जाय, लेकिन कहीं बात पक्की न होती थी। अपने पति के मर जाने के बाद गंगा ने कोई दूसरा घर न किया था, न कोई दूसरा धन्धा ही करती थी। इससे लोगों को संदेह हो गया था कि आखिर इसका गुजर कैसे होता है! और लोग तो छाती फाड़-फाड़कर काम करते हैं, फिर भी पेट-भर अन्न मयस्सर नहीं होता। यह स्त्री कोई धंध नहीं करती, फिर भी

मां-बेटी आराम से रहती हैं, किसी के सामने हाथ नहीं फैलातीं। इसमें कुछ-न-कुछ रहस्य अवश्य है। धीरे-धीरे यह संदेह और भी दृढ़ हो गया और अब तक जीवित था। बिरादरी में कोई गौरा से सगाई करने पर राजी न होता था। शूद्रों की बिरादरी बहुत छोटी होती है। दस-पांच कोस से अधिक उसका क्षेत्र नहीं होता, इसीलिए एक-दूसरे के गुण-दोष किसी से छिपे नहीं रहते, न उन पर परदा ही डाला जा सकता है।

इस भ्रांति को शान्त करने के लिए मां ने बेटी के साथ कई तीर्थ-यात्राएं कीं। उड़ीसा तक हो आयी, लेकिन संदेह न मिटा। गौरा युवती थी, सुन्दरी थी, पर उसे किसी ने कुएं पर या खेतों में हंसते-बोलते नहीं देखा। उसकी निगाह कभी ऊपर उठती ही न थी। लेकिन ये बातें भी संदेह को और पुष्ट करती थीं। अवश्य कोई-न-कोई रहस्य है। कोई युवती इतनी सती नहीं हो सकती। कुछ गुप-चुप की बात अवश्य है।

योंही दिन गुजरते जाते थे। बूढ़िया दिनोंदिन चिन्ता से घुल नही रही थी। उधर सुन्दरी की मुख-छवि दिनोंदिन निखरती जाती थी। कली खिल कर फूल हो रही थी।

2

एक दिन एक परदेशी गांव से होकर निकला। दस-बारह कोस से आ रहा था। नौकरी की खोज में कलकत्ता जा रहा था। रात हो गयी। किसी कहार का घर पूछता हुआ गंगा के घर आया। गंगा ने उसका खूब आदर-सत्कार किया, उसके लिए गेहूं का आटा लायी, घर से बरतन निकालकर दिये। कहार ने पकाया, खाया, लेटा, बातें होने लगीं। सगाई की चर्चा छिड़ गयी। कहार जवान था, गौरा पर निगाह पड़ी, उसका रंग-ढंग देखा, उसकी सजल छवि आंखों में खुब गयी। सगाई करने पर राजी हो गया। लौटकर घर चला गया। दो-चार गहने अपनी बहन के यहां से लाया; गांव के बजाज ने कपड़े उधार दे दिये। दो-चार भाई बन्दों के साथ सगाई करने आ पहुंचा। सगाई हो गयी, यहीं रहने लगा। गंगा बेटी और दामाद को आंखों से दूर न कर सकती थी।

परन्तु दस ही पांच दिनों में मंगरू के कानों में इधर-उधर की बातें पड़ने लगीं। सिर्फ बिरादरी ही के नहीं, अन्य जाति वाले भी उसके कान भरने लगे। ये बातें सुन-सुन कर मंगरू पछताता था कि नाहक यहां फंसा। पर गौरा को छोड़ने का खयाल कर उसका दिल कांप उठता था।

एक महीने के बाद मंगरू अपनी बहन के गहने लौटाने गया। खाना खाने के समय उसका बहनोई उसके साथ भोजन करने न बैठा। मंगरू को कुछ संदेह हुआ, बहनोई से बोला—तुम क्यों नही खाते?

बहनोई ने कहा—तुम खा लो, मैं फिर खा लूंगा।

मंगरू—बात क्या है? तुम खाने क्यों नहीं बैठते?

बहनोई—जब तक पंचायत न होगी, मैं तुम्हारे साथ कैसे खा सकता हूं? तुम्हारे लिए बिरादरी भी न छोड़ दूंगा। किसी से पूछा न गाछा, जाकर एक हरजाई से सगाई कर ली।

मंगरू चौके पर से उठ आया, मिरजई पहनी और ससुराल चला आया। बहन खड़ी रोती रह गयी।

उसी रात को वह किसी से कुछ कहे-सुने बगैर, गौरा को छोड़कर कहीं चला गया। गौरा नींद में मग्न थी। उसे क्या खबर थी कि वह रत्न, जो मैंने इतनी तपस्या के बाद पाया है, मुझे सदा के लिए छोड़े चला जा रहा है।

3

कई साल बीत गये। मंगरू का कुछ पता न चला। कोई पत्र तक न आया, पर गौरा बहुत प्रसन्न थी। वह मांग में सेंदुर डालती, रंग-बिरंग के कपड़े पहनती और अधरों पर मिस्सी के धड़े जमाती। मंगरू भजनों की एक पुरानी किताब छोड़ गया था। उसे कभी-कभी पढ़ती और गाती। मंगरू ने उसे हिन्दी सिखा दी थी। टटोल-टटोल कर भजन पढ़ लेती थी।

पहले वह अकेली बैठी रहती। गांव की और स्त्रियों के साथ बोलते-चालते उसे शर्म आती थी। उसके पास वह वस्तु न थी, जिस पर दूसरी स्त्रियां गर्व करती थीं। सभी अपने-अपने पति की चर्चा करतीं। गौरा के पति कहां था? वह किसकी बातें करती! अब उसके भी पति था। अब वह अन्य स्त्रियों के साथ इस विषय पर बातचीत करने की अधिकारिणी थी। वह भी मंगरू की चर्चा करती, मंगरू कितना स्नेहशील है, कितना सज्जन, कितना वीर। पति-चर्चा से उसे कभी तृप्ति ही न होती थी।

स्त्रियां पूछतीं—मंगरू तुम्हें छोड़ कर क्यों चले गये?

गौरा कहती—क्या करते? मर्द कभी ससुराल में पड़ा रहता है। देश-परदेश में निकल कर चार पैसे कमाना ही तो मर्दों का काम है, नहीं तो मान-मरजाद का निर्वाह कैसे हो?

जब कोई पूछता, चिट्ठी-पत्री क्यों नहीं भेजते? तो हंसकर कहती—अपना पता-ठिकाना बताने में डरते हैं। जानते हैं न गौरा आकर सिर पर सवार हो जायगी। सच कहती हूं, उनका पता-ठिकाना मालूम हो जाय, तो यहां, मुझसे एक दिन भी न रहा जाय। वह बहुत अच्छा करते हैं कि मेरे पास चिट्ठी-पत्री नहीं भेजते। बेचारे परदेश में कहां घर-गिरस्ती संभालते फिरेंगे?

एक दिन किसी सहेली ने कहा—हम न मानेंगे, तुझसे जरूर मंगरू से झगड़ा हो गया है, नहीं तो बिना कुछ कहे-सुने क्यों चले जाते?

गौरा ने हंसकर कहा—बहन, अपने देवता से भी कोई झगड़ा करता है? वह मेरे मालिक हैं, भला मैं उनसे झगड़ा करूंगी? जिस दिन झगड़े की नौबत आयेगी, कहीं डूब मरूंगी। मुझसे कहके जाने पाते? मैं उनके पैरों से लिपट न जाती?

4

एक दिन कलकत्ते से एक आदमी आकर गंगा के घर ठहरा। पास ही के किसी गांव में अपना घर बताया। कलकत्ते में वह मंगरू के पड़ोस ही में रहता था। मंगरू ने उससे गौरा को अपने साथ लाने को कहा था। दो साड़ियां और राह-खर्च के लिए रुपये भी भेजे थे। गौरा फूली न समायी। बूढ़े ब्राह्मण के साथ चलने को तैयार हो गयी। चलते वक्त वह गांव की सब औरतों से गले मिली। गंगा उसे स्टेशन तक पहुंचाने गई सब कहते

थे, बेचारी लड़की के भाग जग गये, नहीं तो यहां कुढ़-कुढ़ कर मर जाती।

रास्ते-भर गौरा सोचती थी—न जाने वह कैसे हो गये होंगे। अब तो मूंछें अच्छी तरह निकल आयी होंगी। परदेश में आदमी सुख से रहता है। देह भर आयी होगी। बाबू साहब हो गये होंगे। मैं पहले दो-तीन दिन उनसे बोलूंगी नहीं फिर पूछूंगी—तुम मुझे छोड़कर क्यों चले गये? अगर किसी ने मेरे बारे में कुछ बुरा-भला कहा ही था, तो तुमने उसका विश्वास क्यों कर लिया? तुम अपनी आंखों से न देखकर दूसरों के कहने पर क्यों गये; मैं भली हूं या बुरी हूं, हूं तो तुम्हारी, तुमने मुझे इतने दिनों रुलाया क्यों? तुम्हारे बारे में अगर इसी तरह कोई मुझसे कहता, तो क्या मैं तुमको छोड़ देती? जब तुमने मेरी बांह पकड़ ली, तो तुम मेरे हो गये। फिर तुममें लाख ऐब हों, मेरी बला से। चाहे तुम तुर्क ही क्यों न हो जाओ, मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकती। तुम क्यों मुझे छोड़ भागे? क्या समझते थे, भागना सहज है? आखिर झख मार कर बुलाया कि नहीं? कैसे न बुलाते? मैंने तो तुम्हारे ऊपर दया की, कि चली आयी, नहीं तो कह देती कि मैं ऐसे निर्दयी के पास नहीं जाती, तो तुम आप दौड़े आते तप करने से देवता भी मिल जाते हैं, आकर सामने खड़े हो जाते हैं; तुम कैसे न आते? वह बार-बार उद्विग्न हो-होकर बूढ़े ब्राह्मण से पूछती, अब कितनी दूर है? धरती के छोर पर रहते हैं क्या? और भी कितनी ही बातें वह पूछना चाहती थी, लेकिन संकोच-वश न पूछ सकती थी। मन-ही-मन अनुमान करके अपने को सन्तुष्ट कर लेती थी। उनका मकान बड़ा-सा होगा, शहर में लोग पक्के घरों में रहते हैं। जब उनका साहब इतना मानता है, तो नौकर भी होगा। मैं नौकर को भगा दूंगी। मैं दिन-भर पड़े-पड़े क्या किया करूंगी?

बीच-बीच में उसे घर की याद भी आ जाती थी। बेचारी अम्मां रोती होंगी। अब उन्हें घर का सारा काम आप ही करना पड़ेगा। न-जाने बकरियों को चराने ले जाती हैं या नहीं। बेचारी दिन-भर में-में करती होंगी। मैं अपनी बकरियों के लिए महीने-महीने रुपये भेजूंगी। जब कलकत्ते से लौटूंगी तब सबके लिए साड़ियां लाऊंगी। तब मैं इस तरह थोड़े लौटूंगी। मेरे साथ बहुत-सा असबाब होगा। सबके लिए कोई-न-कोई सौगात लाऊंगी। तब तक तो बहुत-सी बकरियां हो जायंगी।

यही सुख स्वप्न देखते-देखते गौरा ने सारा रास्ता काट दिया। पगली क्या जानती थी कि मेरे मन कुछ और है कर्त्ता के मन कुछ और। क्या जानती थी कि बूढ़े ब्राह्मणों के भेष में भी पिशाच होते हैं। मन की मिठाई खाने में मगन थी।

5

तीसरे दिन गाड़ी कलकत्ते पहुंची। गौरा की छाती धड़-धड़ करने लगी। वह यहीं कहीं खड़े होंगे। अब आते ही होंगे। यह सोचकर उसने घूंघट निकाल लिया और संभल बैठी। मगर मंगरू वहां न दिखाई दिया। बूढ़ा ब्राह्मण बोला—मंगरू तो यहां नहीं दिखाई देता, मैं चारों ओर छान आया। शायद किसी काम में लग गया होगा, आने की छुट्टी न मिली होगी, मालूम भी तो न था कि हम लोग किस गाड़ी से आ रहे हैं। उनकी राह क्यों देखें, चलो, डेरे पर चलें।

दोनों गाड़ी पर बैठ कर चले। गौरा कभी तांगे पर सवार न हुई थी। उसे गर्व

हो रहा था कि कितने बाबू लोग पैदल जा रहे हैं, मैं तांगे पर बैठी हूं।

एक क्षण में गाड़ी मंगरू के डेरे पर पहुंच गयी। एक विशाल भवन था, अहाता साफ-सुथरा, सायबान में फूलों के गमले रखे हुए थे। ऊपर चढ़ने लगी, विस्मय, आनन्द और आशा से। उसे अपनी सुधि ही न थी। सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते पैर दुखने लगे। यह सारा महल उनका है। केराया बहुत देना पड़ता होगा। रुपये को तो वह कुछ समझते ही नहीं। उसका हृदय धड़क रहा था कि कहीं मंगरू ऊपर से उतरते आ न रहे हों। सीढ़ी पर भेंट हो गयी, तो मैं क्या करूंगी? भगवान करे वह पड़े सोते हों, तब मैं जगाऊं और वह मुझे देखते ही हड़बड़ा कर उठ बैठें। आखिर सीढ़ियों का अन्त हुआ। ऊपर एक कमरे में गौरा को ले जाकर ब्राह्मण देवता ने बिठा दिया। यही मंगरू का डेरा था। मगर मंगरू यहां भी नदारद। कोठरी में केवल एक खाट पड़ी हुई थी। एक किनारे दो-चार बरतन रखे हुए थे। यही उनकी कोठरी है। तो मकान किसी दूसरे का है, उन्होंने यह कोठरी केराये पर ली होगी। देखती हूं, चूल्हा ठंडा पड़ा हुआ है। मालूम होता है, रात को बाजार में पूरियां खाकर सो रहे होंगे। यही उनके सोने की खाट है। एक किनारे घड़ा रखा हुआ था। गौरा का मारे प्यास के तालू सूख रहा था। घड़े से पानी उंड़ेल कर पिया। एक किनारे एक झाड़ू रखा था। गौरा रास्ते की थकी थी, पर प्रेमोल्लास में थकन कहां? उसने कोठरी में झाड़ू लगायी, बरतनों को धो-धोकर एक जगह रखा। कोठरी की एक-एक वस्तु, यहां तक कि उसकी फर्श और दीवारों में उसे आत्मीयता की झलक दिखायी देती थी। उस घर में भी जहां उसने अपने जीवन के पच्चीस वर्ष काटे थे, उसे अधिकार का ऐसा गौरव-युक्त आनन्द न प्राप्त हुआ था।

मगर उस कोठरी में बैठे-बैठे उसे सन्ध्या हो गयी और मंगरू का कहीं पता नहीं। अब छुट्टी मिली होगी। सांझ को सब जगह छुट्टी होती है। अब वह आ रहे होंगे। मगर बूढ़े बाबा ने उनसे कह तो दिया ही होगा, क्या वह अपने साहब से थोड़ी देर की छुट्टी न ले सकते थे? कोई बात होगी, तभी तो नहीं आये।

अंधेरा हो गया। कोठरी में दीपक न था। गौरा द्वार पर खड़ी पति की बाट देख रही थी। जीने पर बहुत-से आदमियों के चढ़ने-उतरने की आहट मिलती थी, बार-बार गौरा को मालूम होता था कि वह आ रहे हैं, पर इधर कोई न आता था।

नौ बजे बूढ़े बाबा आये। गौरा ने समझा, मंगरू हैं। झपटकर कोठरी के बाहर निकल आयी। देखा तो ब्राह्मण? बोली—वह कहां रह गये?

बूढ़ा—उनकी तो यहां से बदली हो गयी। दफ्तर में गया था तो मालूम हुआ कि वह कल अपने साहब के साथ यहां से कोई आठ दिन की राह पर चले गये। उन्होंने साहब के बहुत हाथ-पैर जोड़े कि मुझे दस दिन की मुहलत दे दीजिए, लेकिन साहब ने एक न मानी। मंगरू यहां लोगों से कह गये हैं कि घर के लोग आयें तो मेरे पास भेज देना। अपना पता दे गये हैं। कल मैं तुम्हें यहां से जहाज पर बैठा दूंगा। उस जहाज पर हमारे देश के और भी बहुत से आदमी होंगे; इसलिए मार्ग में कोई कष्ट न होगा।

गौरा न पूछा—कै दिन में जहाज पहुंचेगा?

बूढ़ा—आठ-दस दिन से कम न लगेंगे, मगर घबराने की काई बात नहीं। तुम्हें किसी बात की तकलीफ न होगी।

6

अब तक गौरा को अपने गांव लौटने की आशा थी। कभी-न-कभी वह अपने पति को वहां अवश्य खींच ले जायगी। लेकिन जहाज पर बैठकर उसे ऐसा मालूम हुआ कि अब फिर माता को न देखूंगी, फिर गांव के दर्शन न होंगे, देश से सदा के लिए नाता टूट रहा है। वह देर तक घाट पर खड़ी रोती रही, जहाज और समुद्र देखकर उसे भय हो रहा था। हृदय दहल जाता था।

शाम को जहाज खुला। उस समय गौरा का हृदय एक अक्षय भय से चंचल हो उठा। थोड़ी देर के लिए नैराश्य ने उस पर अपना आतंक जमा लिया। न जाने किस देश जा रही हूं, उनसे वहां भेंट भी होगी या नहीं। उन्हें कहां खोजती फिरूंगी, कोई पता-ठिकाना भी तो नहीं मालूम। बार-बार पछताती थी कि एक दिन पहिले क्यों न चली आयी। कलकत्ते में भेंट हो जाती तो मैं उन्हें वहां कभी न जाने देती।

जहाज पर और भी कितने ही मुसाफिर थे, कुछ स्त्रियां भी थीं। उनमें बराबर गाली-गलौच होती रहती थी। इसलिए गौरा को उनसे बातें करने की इच्छा न होती थी। केवल एक स्त्री उदास दिखाई देती थी। रंग-ढंग से वह किसी भले घर की स्त्री मालूम होती थी। गौरा ने उससे पूछा—तुम कहां जाती हो बहन?

उस स्त्री की बड़ी-बड़ी आंखें सजल हो गयीं। बोली, कहां बताऊं बहन कहां जा रही हूं। जहां भाग्य लिये जाता है, वहीं जा रही हूं। तुम कहां जाती हो?

गौरा—मैं तो अपने मालिक के पास जा रही हूं। जहां यह जहाज रुकेगा वहीं नौकर हैं। मैं कल आ जाती तो उनसे कलकत्ते में ही भेंट हो जाती। आने में देर हो गयी। क्या जानती थी कि वह इतनी दूर चले जाएंगे, नहीं तो क्यों देर करती!

स्त्री अरे बहन, कहीं तुम्हें भी तो कोई बहकाकर नहीं लाया है? तुम घर से किसके साथ आयी हो?

गौरा—मेरे आदमी ने कलकत्ता से आदमी भेजकर मुझे बुलाया था।

स्त्री—वह आदमी तुम्हारी जान-पहचान का था?

गौरा—नहीं, उसी तरफ का एक बूढ़ा ब्राह्मण था।

स्त्री—वही लम्बा-सा, दुबला-पतला लकलक बूढ़ा; जिसकी एक आंख में फूली पड़ी हुई है।

गौरा—हां, हां वही। क्या तुम उसे जानती हो?

स्त्री—उसी दुष्ट ने तो मेरा भी सर्वनाश किया। ईश्वर करे, उसकी सातों पुश्तें नरक भोगें, उसका निर्वंश हो जाय, कोई पानी देनेवाला भी न रहे, कोढ़ी होकर मरे। मैं अपना वृत्तान्त सुनाऊं तो तुम समझोगी कि झूठ है। किसी को विश्वास न आयेगा। क्या कहूं, बस यही समझ लो कि इसके कारण मैं न घर की रह गयी, न घाट की। किसी को मुंह नहीं दिखा सकती। मगर जान तो बड़ी प्यारी होती है मिरिच के देश जा रही हूं कि वहीं मेहनत-मजूरी करके जीवन के दिन काटूं।

गौरा के प्राण नहों में समा गये। मालूम हुआ जहाज अथाह जल में डूबा जा रहा है। समझ गयी कि बूढ़े ब्राह्मण ने दगा की। अपने गांव में सुना करती थी कि गरीब लोग मिरिच में भरती होने के लिए जाया करते हैं। मगर जो वहां जाता है, वह फिर नहीं

लौटता। हा भगवान, तुमने मुझे किस पाप का यह दण्ड दिया? बोली–यह सब क्यों लोगों को इस तरह छलकर मिरिच भेजते हैं?

स्त्री–रुपये के लोभ से और किसलिए? सुनती हूं, आदमी पीछे इन सभों को कुछ रुपये मिलते हैं।

गौरा–तो बहन वहां हमें क्या करना पड़ेगा?

स्त्री–मजूरी।

गौरा सोचने लगी–अब क्या करूं, वह आशा-नौका पर बैठी हुई वह चली जा रही थी, टूट गयी थी और अब समुद्र की लहरों के सिवा उसकी रक्षा करने वाला कोई न था। जिस आधार पर उसने अपना जीवन-भवन बनाया था, वह जलमग्न हो गया। अब उसके लिए जल के सिवा और कहां आश्रय है? उसको अपनी माता की, अपने घर की, अपने गांव की, सहेलियों की याद आयी और ऐसी घोर मर्म वेदना होने लगी, मानो कोई सर्प अन्तस्तल में बैठा हुआ, बार-बार डस रहा हो। भगवान्! अगर मुझे यही यातना देनी थी तो तुमने मुझे जन्म ही क्यों दिया था? तुम्हें दुखिया पर दया नहीं आती? जो पिसे हुए हैं उन्हीं को पीसते हो! करुण स्वर से बोली–तो अब क्या करना होगा बहन?

स्त्री–यह तो वहां पहुंचकर मालूम होगा। अगर मजूरी ही करनी पड़े तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर किसी ने कुदृष्टि से देखा तो मैंने निश्चय कर लिया है कि या तो उसी के प्राण ले लूंगी या अपने प्राण दे दूंगी।

यह कहते-कहते उसे अपना वृत्तान्त सुनाने की वह उत्कट अच्छा हुई, जो दुखियों को हुआ करती है। बोली–मैं बड़े घर की बेटी और उससे भी बड़े घर की बहू हूं, पर अभागिनी! विवाह के तीसरे ही साल पतिदेव का देहान्त हो गया। चित्त की कुछ ऐसी दशा हो गयी कि नित्य मालूम होता कि वह मुझे बुला रहे हैं। पहले तो आंख झपकते ही उनकी मूर्ति सामने आ जाती थी, लेकिन फिर तो यह दशा हो गयी कि जाग्रत दशा में भी रह-रहकर उनके दर्शन होने लगे। बस यही जान पड़ता था कि वह साक्षात् खड़े बुला रहे हैं। किसी से शर्म के मारे कहती न थी, पर मन में यह शंका होती थी कि जब उनका देहावसान हो गया है तो वह मुझे दिखाई कैसे देते हैं? मैं इसे भ्रान्ति समझकर चित्त को शान्त न कर सकती? मन कहता था, जो वस्तु प्रत्यक्ष दिखायी देती है, वह मिल क्यों नहीं सकती? केवल वह ज्ञान चाहिए। साधु-महात्माओं के सिवा ज्ञान और कौन दे सकता है? मेरा तो अब भी विश्वास है कि अभी ऐसी क्रियाएं हैं, जिनसे हम मरे हुए प्राणियों से बातचीत कर सकते हैं, उनको स्थल रूप में देख सकते हैं। महात्माओं की खोज में रहने लगी। मेरे यहां अक्सर साधु-सन्त आते थे, उनसे एकान्त में इस विषय में बातें किया करती थी, पर वे लोग सदुपदेश देकर मुझे टाल देते थे। मुझे सदुपदेशों की जरूरत न थी। मैं वैधव्य-धर्म खूब जानती थी। मैं तो वह ज्ञान चाहती थी जो जीवन और मरण के बीच का परदा उठा दे। तीन साल तक मैं इसी खेल में लगी रही। दो महीने होते हैं वही बूढ़ा ब्राह्मण संन्यासी बना हुआ मेरे यहां जा पहुंचा। मैंने इससे वही भिक्षा मांगी। इस धूर्त ने कुछ ऐसा मायाजाल फैलाया कि मैं आंखें रहते हुए भी फंस गयी। अब सोचती हूं तो अपने ऊपर आश्चर्य होता है कि मुझे उसकी बातों पर इतना विश्वास क्यों हुआ? मैं पति-दर्शन के लिए सब कुछ झेलने को, सब कुछ करने को

तैयार थी। इसने मुझे रात को अपने पास बुलाया। मैं घरवालों से पड़ोसिन के घर जाने का बहाना करके इसके पास गयी। एक पीपल से इसकी धूई जल रही थी। उस विमल चांदनी में यह जटाधारी ज्ञान और योग का देवता-सा मालूम होता था। मैं आकर धूई के पास खड़ी हो गयी। उस समय यदि बाबाजी मुझे आग में कूद पड़ने की आज्ञा देते, तो मैं तुरन्त कूद पड़ती। इसने मुझे बड़े प्रेम से बैठाया और मेरे सिर पर हाथ रख कर न जाने क्या कर दिया कि मैं बेसुध हो गयी। फिर मुझे कुछ नहीं मालूम कि मैं कहां गयी; क्या हुआ। जब मुझे होश आया तो मैं रेल पर सवार थी। जी में आया कि चिल्लाऊं, पर यह सोचकर कि अब गाड़ी रुक भी गयी और मैं उतर भी पड़ी तो घर में घुसने न पाऊंगी, मैं चुपचाप बैठी रह गई। मैं परमात्मा की दृष्टि में निर्दोष थी, पर संसार की दृष्टि में कलंकित हो चुकी थी। रात को किसी युवती का घर से निकल जाना कलंकित करने के लिए काफी था। जब मुझे मालूम हो गया कि सब मुझे मिर्च टापू में भेज रहे हैं तो मैंने जरा भी आपत्ति नहीं की। मेरे लिये अब सारा संसार एक-सा है। जिसका संसार में कोई न हो, उसके लिए देश-परदेश दोनों बराबर हैं। हां, यह पक्का निश्चय कर चुकी हूं कि मरते दम तक अपने सत की रक्षा करूंगी। विधि के हाथ में मृत्यु से बढ़ कर कोई यातना नहीं। विधवा के लिए मृत्यु का क्या भय। उसका तो जीना और मरना दोनों बराबर है। बल्कि मर जाने से जीवन की विपत्तियों का तो अन्त हो जायगा।

गौरा ने सोचा—इस स्त्री में कितना धैर्य और साहस है। फिर मैं क्यों इतनी कातर और निराश हो रही हूं? जब जीवन की अभिलाषाओं का अन्त हो गया तो जीवन के अन्त का क्या डर। बोली—बहन, हम और तुम एक जगह रहेंगी। मुझे तो अब तुम्हारा ही भरोसा है।

स्त्री ने कहा—भगवान् का भरोसा रखो और मरने से मत डरो।

सघन अन्धकार छाया हुआ था। ऊपर काला आकाश था, नीचे काला जल। गौरा आकाश की ओर ताक रही थी। उसकी संगिनी जल की ओर। उसके सामने आकाश के कुसुम थे, इसके चारों ओर अनन्त, अखण्ड, अपार अन्धकार था!

जहाज से उतरते ही एक आदमी ने यात्रियों के नाम लिखने शुरू किये। इसका पहनावा तो अंग्रेजी था, पर बातचीत से हिन्दुस्तानी मालूम होता था। गौरा सिर झुकाये अपनी संगिनी के पीछे खड़ी थी। उस आदमी की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ी। उसने दबी आंखों से उसकी ओर देखा। उसके समस्त शरीर में सनसनी दौड़ गयी। क्या स्वप्न तो नहीं देख रही हूं। आंखों पर विश्वास न आया; फिर उस पर निगाह डाली। उसकी छाती वेग से धड़कने लगी। पैर थर-थर कांपने लगे। ऐसा मालूम होने लगा, मानो चारों ओर जल-ही-जल है और उसमें बही जा रही हूं। उसने अपनी संगिनी का हाथ पकड़ लिया, नहीं तो जमीन में गिर पड़ती। उसके सम्मुख वही पुरुष खड़ा था, जो उसका प्राणाधार था और जिससे इस जीवन में भेंट होने की उसे लेशमात्र भी आशा न थी। यह मंगरू था, इसमें जरा भी सन्देह न था। हां उसकी सूरत बदल गयी थी। यौवन-काल का वह कान्तिमय साहस, सदय छवि, नाम को भी न थी। बाल खिचड़ी हो गये थे, गाल पिचके हुए, लाल आंखों से कुवासना और कठोरता झलक रही थी। पर था

वह मंगरू। गौरा के जी में प्रबल इच्छा हुई कि स्वामी के पैरों से लिपट जाऊं। चिल्लाने का जी चाहा, पर संकोच ने मन को रोका। बूढ़े ब्राह्मण ने बहुत ठीक कहा था। स्वामी ने अवश्य मुझे बुलाया था और आने से पहले यहां चले आये। उसने अपनी संगिनी के कान में कहा–बहन, तुम उस ब्राह्मण को व्यर्थ ही बुरा कह रही थीं। यही तो वह हैं जो यात्रियों के नाम लिख रहे हैं।

स्त्री–सच, खूब पहचानती हो?

गौरा–बहन, क्या इसमें भी धोखा हो सकता है?

स्त्री–तब तो तुम्हारे भाग जग गये, मेरी भी सुधि लेना।

गौरा–भला, बहन ऐसा भी हो सकता है कि यहां तुम्हें छोड़ दूं।

मंगरू यात्रियों से बात-बात पर बिगड़ता था, बात-बात पर गालियां देता था, कई आदमियों को ठोकर मारे और कई को केवल अपने गांव का जिला न बता सकने के कारण धक्का देकर गिरा दिया। गौरा मन-ही-मन गड़ी जाती थी। साथ ही अपने स्वामी के अधिकार पर उसे गर्व भी हो रहा था। आखिर मंगरू उसके सामने आकर खड़ा हो गया और कुचेष्टा-पूर्ण नेत्रों से देखकर बोला–तुम्हारा क्या नाम है?

गौरा ने कहा–गौरा।

मंगरू चौंक पड़ा, फिर बोला–घर कहां है?

गौरा ने कहा–मदनपुर; जिला बनारस।

यह कहते-कहते उसे हंसी आ गयी। मंगरू ने अबकी उसकी ओर ध्यान से देखा, तब लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोला–गौरा! तुम यहां कहां? मुझे पहचानती हो?

गौरा रो रही थी, मुंह से बात न निकली।

मंगरू फिर बोला–तुम यहां कैसे आयीं?

गौरा खड़ी हो गयी, आंसू पोंछ डाले और मंगरू की ओर देखकर बोली–तुम्हीं ने तो बुला भेजा था।

मंगरू–मैंने! मैं तो सात साल से यहां हूं।

गौरा–तुमने उस बूढ़े ब्राह्मण से मुझे लाने को नहीं कहा था?

मंगरू–कह तो रहा हूं, मैं सात साल से यहां हूं और मरने पर ही यहां से जाऊंगा। भला, तुम्हें क्यों बुलाता।

गौरा को मंगरू से इस निष्ठुरता की आशा न थी। उसने सोचा, अगर यह सत्य भी हो कि इन्होंने मुझे नहीं बुलाया, तो भी इन्हें मेरा यों अपमान न करना चाहिए था। क्या वह समझते हैं कि मैं इनकी रोटियों पर आयी हूं? यह तो इतने ओछे स्वभाव के न थे। शायद दरजा पाकर इन्हें मद हो गया है। नारिसुलभ अभिमान से गरदन उठाकर उसने कहा–तुम्हारी इच्छा हो, तो अब लौट जाऊं, तुम्हारे ऊपर भार बनना नहीं चाहती?

मंगरू कुछ लज्जित होकर बोला–अब तुम यहां से लौट नहीं सकतीं गौरा? यहां आकर बिरला ही कोई लौटता है।

यह कहकर वह कुछ देर चिन्ता में मग्न खड़ा रहा, मानो संकट में पड़ा हुआ हो

कि क्या करना चाहिए। उसकी कठोर मुखाकृति पर दीनता का रंग झलक पड़ा। तब कातर स्वर से बोला—जब आ ही गयी हो तो रहो। जैसी कुछ पड़ेगी, देखी जायगी।

गौरा—जहाज फिर कब लौटेगा?

मंगरू—तुम यहां से पांच बरस के पहले नहीं जा सकती।

गौरा—क्यों, क्या कुछ जबरदस्ती है?

मंगरू—हां, यहां का यही हुक्म है।

गौरा—तो फिर मैं अलग मजूरी करके अपना पेट पालूंगी।

मंगरू ने सजल-नेत्र होकर कहा—जब तक मैं जीता हूं, तुम मुझसे अलग नहीं रह सकतीं।

गौरा—तुम्हारे ऊपर भार बनकर न रहूंगी।

मंगरू—मैं तुम्हें भार नहीं समझता गौरा, लेकिन यह जगह तुम-जैसी देवियों के रहने लायक नहीं है, नहीं तो अब तक मैंने तुम्हें कब का बुला लिया होता। वही बूढ़ा आदमी जिसने तुम्हें बहकाया, मुझे घर से आते समय पटने में मिल गया और झांसे देकर मुझे यहां भरती कर दिया। तब से यहीं पड़ा हुआ हूं। चलो, मेरे घर में रहो; वहां बातें होंगी। यह दूसरी औरत कौन है?

गौरा—यह मेरी सखी है। इन्हें भी बूढ़ा बहका लाया है।

मंगरू—यह तो किसी कोठी में जायंगी? इन सब आदमियों की बांट होगी। जिसके हिस्से में जितने आदमी आयेंगे, उतने हर एक कोठी में भेजे जायंगे।

गौरा—यह तो मेरे साथ रहना चाहती हैं।

मंगरू—अच्छी बात है, इन्हें भी लेती चलो।

यात्रियों के नाम तो लिखे जा चुके थे, मंगरू ने उन्हें एक चपरासी को सौंपकर दोनों औरतों के साथ घर की राह ली। दोनों ओर सघन वृक्षों की कतारें थीं। जहां तक निगाह जाती थी, ऊख ही ऊख दिखायी देती थी। समुद्र की ओर से शीतल, निर्मल वायु के झोंके आ रहे थे। अत्यन्त सुरम्य दृश्य था। पर मंगरू की निगाह उस ओर न थी। वह भूमि की ओर ताकता, सिर झुकाए, सन्दिग्ध चाल से चला जा रहा था, मानो मन-ही-मन कोई समस्या हल कर रहा था।

थोड़ी ही दूर गए थे कि सामने से दो आदमी आते हुए दिखायी दिये। समीप आकर दोनों रुक गये और एक ने हंसकर कहा—मंगरू, इनमें से एक हमारी है।

दूसरा बोला—और दूसरी मेरी।

मंगरू का चेहरा तमतमा उठा था। भीषण क्रोध से कांपता हुआ बोला—यह दोनों मेरे घर की औरतें हैं। समझ गये?

इन दोनों ने जोर से कहकहा मारा और एक ने गौरा के समीप आकर उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा करके कहा—यह मेरी है। चाहे तुम्हारे घर की हो, चाहे बाहर की। बचा, हमें चकमा देते हो।

मंगरू—कासिम, इन्हें मत छेड़ो, नहीं तो अच्छा न होगा। मैंने कह दिया, मेरे घर की औरतें हैं।

मंगरू की आंखों से अग्नि की ज्वाला-सी निकल रही थी। वह दोनों उसके मुख

का भाव देखकर कुछ सहम गए और समझ लेने की धमकी देकर आगे बढ़े। किन्तु मंगरू के अधिकार-क्षेत्र से बाहर पहुंचते ही एक ने पीछे से ललकार कर कहा–देखें कहां ले के जाते हो?

मंगरू ने उधर ध्यान नहीं दिया। जरा कदम बढ़ाकर चलने लगा, जैसे संध्या के एकान्त में हम कब्रिस्तान के पास से गुरजते हैं, हमें पग-पग पर यह शंका होती है कि कोई शब्द कान में न पड़ जाय, कोई सामने आकर खड़ा न हो जाय, कोई जमीन के नीचे से कफन ओढ़े उठ न खड़ा हो।

गौरा ने कहा–ये दोनों बड़े शोहदे थे।

मंगरू–और मैं किसलिए कह रहा था कि यह जगह तुम-जैसी स्त्रियों के रहने लायक नहीं है।

सहसा दाहिनी तरफ से एक अंग्रेज घोड़ा दौड़ता हुआ आ पहुंचा और मंगरू से बोला–बेल जमादार, ये दोनों औरतें हमारी कोठी में रहेगा। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं है।

मंगरू ने दोनों औरतों को अपने पीछे कर लिया और सामने खड़ा होकर बोला–साहब, ये दोनों हमारे घर की औरतें हैं।

साहब–ओ हो! तुम झूठा आदमी। हमारे कोठी में कोई औरत नहीं और तुम दो ले जायगा। ऐसा नहीं हो सकता। (गौरा की ओर इशारा करके) इसको हमारे कोठी पर पहुंचा दो।

मंगरू ने सिर से पैर तक कांपते हुए कहा–ऐसा नहीं हो सकता।

मगर साहब आगे बढ़ गया था, उसके कान में बात न पहुंची। उसने हुक्म दे दिया था और उसकी तामील करना जमादार का काम था।

शेष मार्ग निर्विघ्न समाप्त हुआ। आगे मूजरों के रहने के मिट्टी के घर थे। द्वारों पर स्त्री-पुरुष जहां-तहां बैठे हुए थे। सभी इन दोनों स्त्रियों की ओर घूरते थे और आपस में इशारे करते हंसते थे। गौरा ने देखा, उनमें छोटे-बड़े का लिहाज नहीं है, न किसी की आंखों में शर्म है।

एक भदैसल औरत ने हाथ पर चिलम पीते हुए अपनी पड़ोसिन से कहा–चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरा पाख!

दूसरी अपनी चोटी गूंथती हुई बोली–कलोर हैं न।

7

मंगरू दिन-भर द्वार पर बैठा रहा, मानो कोई किसान अपने मटर के खेत की रखवाली कर रहा हो। कोठरी में दोनों स्त्रियां बैठी अपने नसीबों को रो रही थीं। इतनी देर में दोनों को यहां की दशा का परिचय कराया गया था। दोनों भूखी-प्यासी बैठी थीं। यहां का रंग देखकर भूख-प्यास सब भाग गयी थी।

रात के दस बजे होंगे कि एक सिपाही ने आकर मंगरू से कहा–चलो, तुम्हें जण्ट साहब बुला रहे हैं।

मंगरू ने बैठे-बैठे कहा–देखो नब्बी, तुम भी हमारे देश के आदमी हो। कोई मौका

पड़े, तो हमारी मदद करोगे न ? जाकर साहब से कह दो, मंगरू कहीं गया है, बहुत होगा जुरबाना कर देंगे।

नब्बी–न भैया, गुस्से में भरा बैठा है, पिये हुए है, कहीं मार चले, तो बस, चमड़ा इतना मजबूत नहीं है।

मंगरू–अच्छा तो जाकर कह दो, नहीं आता।

नब्बी–मुझे क्या, जाकर कह दूंगा, पर तुम्हारी खैरियत नहीं है।

मंगरू ने जरा देर सोचकर लकड़ी उठायी और नब्बी के साथ साहब के बंगले पर चला। यह वही साहब थे, जिनसे आज मंगरू से भेंट हुई थी। मंगरू जानता था कि साहब से बिगाड़ करके यहां एक क्षण भी निर्वाह नहीं हो सकता। जाकर साहब के सामने खड़ा हो गया। साहब ने दूर से ही डांटा, वह औरत कहां है ? तुमने उसे अपने घर में क्यों रखा है ?

मंगरू–हजूर, वह मेरी ब्याहता औरत है।

साहब–अच्छा, वह दूसरी कौन है ?

मंगरू–वह मेरी सगी बहन है हजूर !

साहब–हम कुछ नहीं जानता। तुमको लाना पड़ेगा। दो में से कोई, दो में से कोई।

मंगरू पैरों पर गिर पड़ा और रो-रोकर अपनी सारी रामकहानी सुना गया। पर साहब जरा भी न पसीजे ! अन्त में वह बोला–हुजूर, वह दूसरी औरतों की तरह नहीं हैं। अगर यहां आ भी गयीं, तो प्राण दे देंगी।

साहब ने हंसकर कहा–ओ ! जान देना इतना आसान नहीं है !

नब्बी–मंगरू अपनी दांव रोते क्यों हो ? तुम हमारे घर नहीं घुसे थे ! अब भी जब घात पाते हो, जा पहुंचते हो। अब क्यों रोते हो।

एजेण्ट–ओ, यह बदमाश है। अभी जाकर लाओ, नहीं तो हम तुमको हण्टरों से पीटेगा।

मंगरू–हजूर जितना चाहे पीटे लें, मगर मुझसे यह काम करने को न कहें, जो मैं जीते-जी नहीं कर सकता !

एजेण्ट–हम एक सौ हण्टर मारेगा।

मंगरू–हजूर एक हजार हण्टर मार लें लेकिन मेरे घर की औरतों से न बोलें।

एजेण्ट नशे में चूर था ; हण्टर लेकर मंगरू पर पिल पड़ा और लगा सड़ासड़ जमाने। दस-बारह कोड़े मंगरू ने धैर्य के साथ सहे, फिर हाय-हाय करने लगा। देह की खाल फट गयी थी और मांस पर चाबुक पड़ता था, तो बहुत जब्त करने पर भी कण्ठ से आर्त्त-ध्वनि निकल आती थी और अभी एक सौ में कुल पन्द्रह चाबुक पड़े थे।

रात के दस बज गये थे। चारों ओर सन्नाटा छाया था और उस नीरव अंधकार में मंगरू का करुण-विलाप किसी पक्षी की भांति आकाश में मंडला रहा था। वृक्षों के समूह भी हतबुद्धि-से खड़े मौन-रोदन की मूर्ति बने हुए थे। वह पाषाणहृदय लम्पट, विवेक शून्य जमादार इस समय एक अपरिचित स्त्री के सतीत्व की रक्षा करने के लिए अपने प्राण तक देने को तैयार था, केवल इस नाते कि यह उसकी पत्नी की संगिनी थी।

वह समस्त संसार की नजरों में गिरना गंवारा कर सकता था, पर अपनी पत्नी की भक्ति पर अखंड राज्य करना चाहता था। इसमें अणुमात्र की कमी भी उनके लिए असह्य थी। उस अलौकिक भक्ति के सामने उसके जीवन का क्या मूल्य था?

ब्राह्मणी तो जमीन पर ही सो गयी थी, पर गौरा बैठी पति की बाट जोह रही थी। अभी तक वह उससे कोई बात न कह सकी थी। सात वर्षों की विपत्ति-कथा कहने और सुनने के लिए बहुत समय की जरूरत थी और रात के सिवा वह समय फिर कब मिल सकता था। उसे ब्राह्मणी पर कुछ क्रोध-सा आ रहा था कि यह क्यों मेरे गले का हार हुई। इसी के कारण तो वह घर में नहीं आ रहे हैं।

यकायक वह किसी का रोना सुनकर चौंक पड़ी। भगवान्, इतनी रात गये कौन दुःख का मारा रो रहा है। अवश्य कोई कहीं मर गया है। वह उठकर द्वार पर आयी और यह अनुमान करके कि मंगरू यहां बैठा हुआ है, बोली–वह कौन रो रहा है! जरा देखो तो।

लेकिन जब कोई जवाब न मिला, तो वह स्वयं कान लगाकर सुनने लगी। सहसा उसका कलेजा धक् से हो गया। तो यह उन्हीं की आवाज है। अब आवाज साफ सुनायी दे रही थी। मंगरू की आवाज थी। वह द्वार के बाहर निकल आयी उसके सामने एक गोली के टप्पे पर एजेन्ट का बंगला था। उसी तरफ से आवाज आ रही थी। कोई उन्हें मार रहा है। आदमी मार पड़ने ही पर इस तरह रोता है। मालूम होता है, वही साहब उन्हें मार रहा है। वह वहां खड़ी न रह सकी, पूरी शक्ति से उस बंगले की ओर दौड़ी, रास्ता साफ था। एक क्षण में वह फाटक पर पहुंच गयी। फाटक बन्द था। उसने जोर से फाटक पर धक्का दिया, लेकिन वह फाटक न खुला और कई बार जोर-जोर से पुकारने पर भी कोई बाहर न निकला, तो वह फाटक के जंगलों पर पैर रखकर कूद पड़ी और उस पार जाते ही उसने एक रोमांचकारी दृश्य देखा। मंगरू नंगे बदन बरामदे में खड़ा था और एक अंग्रेज उसे हन्टरों से मार रहा था। गौरा की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। वह एक छलांग में साहब के सामने जाकर खड़ी हो गयी और मंगरू को अपने अक्षय-प्रेम-सबल हाथों से ढांककर बोली–सरकार, दया करो, इनके बदले मुझे जितना चाहो मार लो; पर इनको छोड़ दो।

एजेन्ट ने हाथ रोक लिया और उन्मत्त की भांति गौरा की ओर कई कदम आकर बोला–हम इसको छोड़ दें, तो तुम मेरे पास रहेगा।

मंगरू के नथने फड़कने लगे। यह पामर, नीच, अंग्रेज मेरी पत्नी से इस तरह की बातें कर रहा है। अब तक वह जिस अमूल्य रत्न की रक्षा के लिए इतनी यातनाएं सह रहा था, वही वस्तु साहब के हाथ में चली जा रही है, यह असह्य था। उसने चाहा कि लपककर साहब की गरदन पर चढ़ बैठूं, जो कुछ होना है, हो जाय। यह अपमान सहने के बाद जीकर ही क्या करूंगा! लेकिन नब्बी ने उसे तुरन्त पकड़ लिया और कई आदमियों को बुलाकर उसके हाथ-पांव बांध दिये। मंगरू भूमि पर छटपटाने लगा!!

गौरा रोती हुई साहब के पैरों पर गिर पड़ी और बोली हुजूर, इन्हें छोड़ दें, मुझ पर दया करें।

एजेण्ट–तुम हमारे पास रहेगा।

गौरा ने खून का घूंट पीकर कहा–हां, रहूंगी।

8

बाहर मंगरू बरामदे में पड़ा कराह रहा था। उसकी देह में सूजन थी और घावों में जलन, सारे अंग जकड़ गये थे। हिलने की भी शक्ति न थी। हवा घावों में शर के समान चुभती थी, लेकिन यह व्यथा वह सह सकता था। असह्य यह था कि साहब गौरा के साथ इसी घर में विहार कर रहा है और मैं कुछ नहीं कर सकता। उसे अपनी पीड़ा भूल-सी गयी थी, कान लगाये सुन रहा था कि उनकी बातों की भनक कान में पड़ जाय, तो देखूं क्या बातें हो रही हैं। गौरा अवश्य चिल्ला कर भागेगी और साहब उसके पीछे दौड़ेगा। अगर मुझसे उठा जाता; तो उस वक्त बचा को खोदकर गाड़ ही देता। लेकिन बड़ी देर हो गयी, न तो गौरा चिल्लायी; न बंगले से निकलकर भागी! वह उस सजे-सजाये कमरे में साहब के साथ बैठी सोच रही थी–क्या इसमें तनिक भी दया नहीं है? मंगरू का पीड़ा-क्रंदन सुन-सुनकर उसके हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। क्या इसके अपने भाईबन्द, मां-बहन नहीं हैं? माता यहां होती, तो उसे इतना अत्याचार न करने देती। मेरी अम्मां लड़कों पर कितना बिगड़ती थीं, जब वह किसी को पेड़ पर ढेले चलाते देखती थीं। पेड़ में भी प्राण होते हैं। क्या इसकी माता इसे एक आदमी के प्राण लेते देखकर भी इसे मना न करती! साहब शराब पी रहा था और गौरा गोश्त काटने का छुरा हाथ में लिए खेल रही थी।

सहसा गौरा की निगाह एक चित्र की ओर गयी। उसमें एक माता बैठी हुई थी। गौरा ने पूछा–साहब यह किसकी तसवीर है। साहब ने शराब का गिलास मेज पर रखकर कहा–ओ, वह हमारे खुदा की मां मरियम है।

गौरा–बड़ी अच्छी तसवीर है! क्यों साहब, तुम्हारी मां जीती हैं न!

साहब–वह मर गया। जब हम यहां आया, तो वह बीमार हो गया हम उसको देख भी नहीं सका।

साहब के मुख-मण्डल पर करुणा की झलक दिखायी दी।

गौरी बोली–तब तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ होगा। तुम्हें अपनी माता का प्यार नहीं था। वह रो-रोकर मर गयी और तुम देखने भी न गये! तभी तुम्हारा दिल कड़ा है।

साहब–नहीं, नहीं, हम अपनी माता को बहुत चाहता था। वैसी औरत दुनिया में न होगी। हमारा बाप हमको बहुत छोटा-सा छोड़कर मर गया था। माता ने कोयले की खान में मजूरी करके हमको पाला।

गौरा–तब तो वह देवी थी। इतनी गरीबी का दुःख सहकर भी तुम्हें दूसरे पर तरस नहीं आता! क्या वह दया की देवी तुम्हारी बेदरदी देखकर दुखी न होती होंगी, उनकी कोई तसवीर तुम्हारे पास है?

साहब–ओ, हमारे पास उनके कई फोटो हैं। देखो, वह उन्हीं की तसवीर है, वह दीवाल पर।

गौरा ने समीप जाकर तसवीर देखी और ...

जान पड़ता है, दया की देवी हैं। वह तुम्हें कभी मारती थीं कि नहीं? मैं तो जानती हूं, वह कभी किसी पर न बिगड़ती रही होंगी। बिलकुल दया की मूर्ति हैं।

साहब—ओ, मामा हमको कभी न हीं मारता था। वह बहुत गरीब था, पर अपने कमाई में कुछ-न-कुछ जरूर खैरात करता था। किसी बे-बाप के बालक को देखकर उस की आंखों में आंसू भर आता था। वह बहुत ही दयावान था।

गौरा ने तिरस्कार के स्वर में कहा—और उसी देवी के पुत्र होकर तुम इतने निर्दयी हो! क्या वह होतीं तो तुम्हें किसी को इस तरह हत्यारों की भांति मारने देतीं? वह सरग में रो रही होंगी। सरग-नरक तो तुम्हारे यहां भी होगा। ऐसी देवी के पुत्र कैसे हो गये?

गौरा को ये बातें कहते हुए जरा भी भय न होता था। उसने अपने मन में एक दृढ़ संकल्प कर लिया था और अब उसे किसी प्रकार का भय न था। जान से हाथ धो लेने का निश्चय कर लेने के बाद भय की छाया भी नहीं रह जाती। किन्तु वह हृदय-शून्य अंग्रेज इन तिरस्कारों पर आग हो जाने के बदले और भी नम्र होता जाता था। गौरा मानवी भावों से कितनी ही अनभिज्ञ हो, पर इतना जानती थी कि अपनी जननी के लिए प्रत्येक हृदय में, चाहे वह साधु का हो या कसाई का, आदर और प्रेम का एक कोना सुरक्षित रहता है। ऐसा भी कोई अभागा प्राणी है, जिसे मातृ-स्नेह की स्मृति थोड़ी देर के लिए रुला न देती हो, उसके हृदय के कोमल भाव को जगा न देती हो?

साहब की आंखें डबडबा गयी थीं। सिर झुकाये बैठा रहा। गौरा ने फिर उसी ध्वनि में कहा—तुमने उनकी सारी तपस्या धूल में मिला दी; जिस देवी ने मर-मरकर तुम्हारा पालन किया, उसी को मरने के पीछे तुम इतना कष्ट दे रहे हो? क्या इसीलिए माता अपने पुत्र को अपना रक्त पिला-पिलाकर पालती है? अगर वह बोल सकतीं तो क्या चुप बैठी रहतीं, तुम्हारे हाथ पकड़ सकतीं तो न पकड़तीं? मैं तो समझती हूं, वह जीती होतीं तो इस वक्त विष खाकर मर जातीं।

साहब अब जब्त न कर सके। नशे में क्रोध की भांति ग्लानि का वेग सहज ही में उठ आता है। दोनों हाथों से मुंह छिपाकर साहब ने रोना शुरू किया और इतना रोया कि हिचकी बंध गयी। माता के चित्र के सम्मुख जाकर वह कुछ देर तक खड़ा रहा, मानो माता से क्षमा मांग रहा हो। तब आकर आर्द्र-कण्ठ से बोला—हमारे माता को अब कैसे शान्ति मिलेगा! हाय-हाय! हमारे सबब से उसको स्वर्ग में भी सुख नहीं मिला। हम कितना अभागा है!

गौरा—अभी जरा देर में तुम्हारा मत बदल जायगा और तुम फिर दूसरों पर अत्याचार करने लगोगे।

साहब—नई, नई, अब हम मामा को कभी दुःख नहीं देगा? हम अभी मंगरू को अस्पताल भेजता है।

9

रात ही को मंगरू अस्पताल पहुंचा दिया गया। एजेन्ट खुद उसको पहुंचाने आया। गौरा भी उसके साथ थी। मंगरू को ज्वर हो आया था, बेहोश पड़ा हुआ था।

मंगरू ने तीन दिन आंखें न खोलीं और गौरा तीनों दिन उसके पास बैठी रही। एक क्षण के लिए भी वहां से न हटी। एंजेन्ट भी कई बार हाल-चाल पूछने आ जाता और हर मरतबा गौरा से क्षमा मांगता।

चौथे दिन मंगरू ने आंखें खोलीं, तो देखा गौरा सामने बैठी हुई है। गौरा उसे आंखें खोलते देखकर पास आ खड़ी हुई और बोली–अब कैसा जी है?

मंगरू ने कहा–तुम यहां कब आयीं?

गौरा–मैं तो तुम्हारे साथ ही यहां आयी थी, तब से यहीं हूं।

मंगरू–साहब के बंगले में क्या जगह नहीं है?

गौरा–अगर बंगले की चाह होती, तो सात समुद्र-पार तुम्हारे पास क्यों आती?

मंगरू–आकर कौन-सा सुख दे दिया है? तुम्हें यही करना था, तो मुझे मर क्यों न जाने दिया?

गौरा ने झुंझला कर कहा–तुम इस तरह की बातें मुझसे न करो। ऐसी बातों से मेरी देह में आग लग जाती है।

मंगरू ने मुंह फेर लिया, मानो उसे गौरा की बात पर विश्वास नहीं आया।

दिन-भर गौरा मंगरू के पास बे दाना-पानी खड़ी रही। गौरा ने कई बार उसे बुलाया, लेकिन वह चुप्पी साधे रह गया। यह सन्देह-युक्त निरादर, कोमल हृदय गौरा के लिए असह्य था। जिस पुरुष को वह देव-तुल्य समझती थी, उसके प्रेम से वंचित होकर वह कैसे जीवित रह सकती थी? यही प्रेम उसके जीवन का आधार था। उसे खोकर अब वह अपना सर्वस्व खो चुकी थी।

आधी रात से अधिक बीत चुकी थी। मंगरू बेखबर सोया हुआ था, शायद वह कोई स्वप्न देख रहा था। गौरा ने उसके चरणों पर सिर रखा और अस्पताल से निकली। मंगरू ने उसका परित्याग कर दिया था। वह भी उसका परित्याग करने जा रही थी।

अस्पताल के पूर्व दिशा में एक फर्लांग पर एक छोटी-सी नदी बहती थी। गौरा उसके कगार पर खड़ी हो गयी। अभी कई दिन पहले वह अपने गांव में आराम से पड़ी हुई थी। उसे क्या मालूम था कि जो वस्तु इतनी मुश्किल से मिल सकती है, वह इतनी आसानी से खोयी भी जा सकती है। उसे अपनी मां की, अपने घर की, अपनी सहेलियों की, अपने बकरी के बच्चों की याद आयी। वह सब कुछ छोड़कर इसीलिए यहां आयी थी? पति के ये शब्द–'क्या साहब के बंगले में जगह नहीं है? उसके मर्मस्थान में बाणों के समान चुभे हुए थे। यह सब मेरे ही कारण तो हुआ? मैं न रहूंगी, तो वह फिर आराम से रहेंगे। सहसा उसे ब्राह्मणी की याद आ गयी। उस दुखिया के दिन यहां कैसे कटेंगे। चलकर साहब से कह दूं कि उसे या तो उसके घर भेज दे या किसी पाठशाला में काम दिला दें।

वह लौटना ही चाहती थी कि किसी ने पुकारा–गौरा! गौरा!!

यह मंगरू का करुण-कम्पित स्वर था। वह चुपचाप खड़ी हो गयी। मंगरू ने फिर पुकारा–

गौरा! गौरा! तुम कहां? मैं ईश्वर से कहता हूं कि....

गौरा ने और कुछ न सुना। वह धम-से नदी में कूद पड़ी। बिना अपने जीवन

का अन्त किए वह स्वामी की विपत्ति का अन्त न कर सकती थी।

धमाके की आवाज सुनते ही मंगरू भी नदी में कूदा। वह अच्छा तैराक था! मगर कई बार गोते मारने पर भी गौरा का कहीं पता न चला।

प्रात:काल दोनों लाशें साथ-साथ नदी में तैर रही थीं। जीवन-यात्रा में उन्हें वह चिर-संग कभी न मिला था। स्वर्ग-यात्रा में दोनों साथ-साथ जा रहे थे!!

['नीच जात की लड़की' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन। उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना', दिसम्बर, 1925 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'चांद' (मासिक पत्रिका), जनवरी, 1926 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित।]